



ओ३म्  
सृष्टिकर्ता विश्वकर्मा  
साप्ताहिक



# आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र

वर्ष: 45, अंक : 29 एक प्रति 2 : रुपये

कुल पृष्ठ : 8

रविवार 20 अक्टूबर, 2019

विक्रमी सम्वत् 2076, सृष्टि सम्वत् 1960853120

दयानन्दाब्द : 195 वार्षिक शुल्क : 100 रुपये

आजीवन शुल्क : 1000 रुपये

दूरभाष : 0181-2292926, 5062726

E-mail: [apspunjab2010@gmail.com](mailto:apspunjab2010@gmail.com),

[www.aryapratinidhisabha.org](http://www.aryapratinidhisabha.org)

वर्ष-45, अंक : 29, 17-20 अक्टूबर 2019 तदनुसार 4 कार्तिक, सम्वत् 2076 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

## बाल की खाल निकालना

ले०-स्वामी वेदानन्द ( दयानन्द ) तीर्थ

**निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभिर्या जरन्ता युवशा ताकृणोतन ।  
सौधन्वना अश्वादश्वमतक्षत युक्त्वा रथमुप देवाँ अयातन ॥**

-ऋ० 1/161/7

**शब्दार्थ-धीतिभिः** = मननों के द्वारा **गाम्** = वाणी को **चर्मणः** = चमड़े से **निः** = रहित करके **अरिणीत** = प्राप्त करो। **या** = जो दो [माता-पिता] **जरन्ता** = वृद्ध [हो रहे हैं] **ता** = उन दोनों को **युवशा** = युवासमान **अकृणोतन** = करो। हे **सौधन्वनाः** = धनुर्विद्या में कुशलो! **अश्वात्** = अश्व से **अश्वम्** = अश्व को **अतक्षत** = बनाओ और **रथम्** = रथ को **युक्त्वा** = जोड़कर **देवान्** = दिव्य पदार्थों को **उप+अयातन** = समीप होकर प्राप्त करो। अथवा **रथं+अयातन** = रथ को जोड़कर विद्वानों के पास जाओ।

**व्याख्या-** 'निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभिः' का अर्थ सायणाचार्य आदि ने 'गौ' का चमड़ा उचेड़ो' ऐसा किया है, किन्तु इस अर्थ की कोई सङ्गति नहीं। हाँ, इससे वेद के मत्थे गोहत्या का कलङ्क अवश्य लगता है, जो सर्वथा अन्याय है। वेद में गौ को अध्व्या=न मारने योग्य माना है। सायणादि का अर्थ 'गां मा हिंसीः' [गौ को मत मार] इस वेदवचन का विरोधी भी होता है। सभी ऋषि-मुनि मानते हैं कि वेद में 'वदतो व्याघातदोष' = पारस्परिक विरोध नहीं है। फिर यदि श्रीसायण जी का अर्थ ठीक हो तो वेदवाक्य 'निश्चर्मणं गामकुरुत' होना चाहिए न कि 'निश्चर्मणो गामरिणीत' चर्म से रहित गौ को प्राप्त करो। चर्म से रहित होने पर तो वह गौ ही न रहेगी। इसलिए इस वाक्य का अर्थ कुछ अन्य है। 'गौ' शब्द का एक अर्थ वाणी भी है, इस अर्थ को मानकर अर्थ होगा-'**वाणी को चर्मरहित करके प्राप्त करो**' अर्थात् बात के मर्म को जानो, जो काल पाकर 'बाल की खाल निकालो' के रूप में आ गया। 'गौ' का एक अर्थ बाल भी है। बाल की खाल निकालने का अर्थ सभी जानते हैं।

इस मन्त्र में उत्तम शिल्पियों को आदेश है। उनका कार्य ऐसा है कि जिसमें उन्हें इस बात की आवश्यकता है। वे अपनी विद्या के सारे रहस्यों को हस्तगत न करें तो कार्य ही न चले।

दूसरे चरण में उपदेश है कि जो बूढ़े माता-पिता हैं, उन्हें जवान बनाओ। ऋग्वेद (१।१२०।८) में भी इसी ढंग की बात कही गई है-जिब्री युवाना पितराकृणोतन=वृद्ध माता पिता को युवा कर दो। माता-पिता को जवान करने का भाव है कि वे वार्द्धक्य के कष्ट को अनुभव न करें। तीसरे चरण में कहा है-सौधन्वना अश्वादश्वमतक्षत-हे उत्तम शिल्पियों। घोड़े से घोड़ा बनाओ। घोड़े से घोड़ा ही बनता है, पैदा होता है। फिर वेद ने यह बात क्यों कही? इसका सीधा-सादा अर्थ है कि घोड़े से उत्तम घोड़ा पैदा करो, अर्थात् तुम्हारे पशुओं की सन्तान आकार, शक्ति आदि में हीन न होने लग जाए। इस विषय में सावधानता न बरती जाए तो उत्तरोत्तर हास होने लगता है। चतुर विज्ञानी मनुष्य हास को रोककर उत्तरोत्तर उत्कर्ष की

व्यवस्था करता है।

चौथे चरण में एक आवश्यक व्यावहारिक तत्त्व का उपदेश है कि शिल्पियों को चाहिए कि वे अपने से उत्कृष्ट विद्वानों की सङ्गति करते रहा करें ताकि शिल्प की उन्नति होती रहे। (स्वाध्याय संदोह से साभार)

**त्वं न इन्द्र वाजयुस्त्वं गव्युः शतक्रतो ।  
त्वं हिरण्ययुर्वसो ॥**

-उ० १.२.२.३

**भावार्थ-** हे जगत्पते परमेश्वर! आप हमारे और हमारे देशी सब भ्राताओं के लिए गेहूँ चावल आदि अन्न, गौ-अश्व आदि उपकारक पशु, सुवर्ण-चांदी आदि धन की इच्छा वाले हूजिये। किसी वस्तु की न्यूनता से हम सब दुःखी वा दरिद्री न रहें, किन्तु हमारे सब भ्राता, सब प्रकार के सुखों से सम्पन्न हुए निश्चिन्त होकर आपकी भक्ति में अपने कल्याण के लिए लग जायें।

**इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्राय स्पृहयन्ति ।  
यन्ति प्रमादमतन्द्राः ॥**

-उ० १.२.३.३

**भावार्थ-** हे जगदीश्वर! आप वेद द्वारा हमें उपदेश दे रहे हैं कि, हे मेरे प्यारे पुत्रो! आप लोगों को योग्य है कि अति निद्रा, आलस्य, विषयासक्ति आदि मेरी भक्ति और ज्ञान के विघ्नों को जीतकर, मेरी इच्छा करो, क्योंकि अतिनिद्राशील आलसी और विषयासक्तों को मेरी भक्ति वा ज्ञान नहीं हो सकता, इसलिए इन सब विघ्नों को दूर कर, मेरी वैदिक आज्ञा के अनुकूल अपना जीवन पवित्र बनाते हुए सदा सुखी रहो।

**सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम श्वसस्यते ।  
त्वामभि प्र नोनुमो जेतारमपराजितम् ॥**

-उ० २.१.१९.२

**भावार्थ-** हे दयासिन्धो भगवन्! जो आपकी शरण आते हैं, उनको किसी प्रकार का भय नहीं प्राप्त होता क्योंकि आप महाबली और सबको जीतने वाले हैं, तो आपकी शरण में आए भक्तों को डर किसका रहा। इसलिए अभय पद की इच्छावाले हमको इस लोक और परलोक में अभय कीजिये।

**पुनानो देववीतय इन्द्रस्य याहि निष्कृतम् ।  
द्युतानो वाजिभिर्हितः ॥**

-उ० २.२.४.३

**भावार्थ-** हे शुद्ध स्वरूप परमात्मन्! आप शरणागत अपवित्रों को भी पवित्र करने और अज्ञानियों को भी ज्ञान का प्रकाश देने वाले हो, प्राणायाम, धारणा, ध्यानादि साधनों से जो आपके विद्वान् भक्त आपके साक्षात् करने के लिए प्रयत्न करते हैं, उनके शुद्ध अन्तःकरण में प्रत्यक्ष होते हो।

# वैदिक यज्ञ विज्ञान

ले.-डॉ. रघुवीर वेदालंकार

‘अयं यज्ञोः विश्वस्य भुवनस्य नाभिः’ (यजु. 23/62) कहकर, यजुर्वेद में यज्ञ को समस्त संसार की नाभि बतलाकर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात कह दी गयी है। जिस प्रकार शरीर में नाभि का अति विशिष्ट स्थान है। नाभि शरीर के ठीक बीच में होती है। पूरा शरीर इस पर निर्भर करता है। नाभि ठीक रहेगी तो शरीर ठीक रहेगा। नाभि के डगमगाते (जिसे धरन डिगना कहते हैं) ही शरीर भी अस्वस्थ हो जायेगा। जन्म से पूर्व बच्चा नाभि के माध्यम से ही माता के शरीर से जुड़कर रस को प्राप्त करता है। नाभि के माध्यम से ही वह जीवित रहता है। संसार में भी इसी प्रकार यज्ञ से जुड़कर ही जीवन को प्राप्त करता है। यज्ञ उसका पोषक है, प्राणदाता है, जीवनदाता है, उसका आधार है।

जन्म लेने के पश्चात् भी शरीर नाभि पर ही आधारित है। जो कुछ भी खाद्य अथवा पेय पदार्थ हम मुख में डालते हैं वह नाभि (उदर) में ही जाकर जमा होता है। वह वहाँ जमा ही नहीं रहता अपितु वहीं से शुरू होती है आबंटन प्रक्रिया। स्थूल रूप से खाया-पीया गया पदार्थ नाभि (उदर) में जाकर सूक्ष्म रूप धारण करके पचना प्रारम्भ होता है। उसका सार तत्व, रस-रक्त, मेद-मज्जा-अस्थि-शुक्र आदि के रूप में परिणत हो जाता है, मलतत्त्व शरीर से बाहर फेंक दिया जाता है।

ठीक यही प्रक्रिया यज्ञ की है। यज्ञ में भी जो हवि घृत-सामग्री आदि के रूप में डाली जाती है वह नष्ट नहीं होती अपितु सूक्ष्म रूप धारण करके विश्व के प्रत्येक अवयव में उसी प्रकार फैल जाती है जैसे शरीर में रक्त आदि धातुएं। शरीर में उक्त धातुओं को फैलाने का कार्य नस-नाड़ियां तथा हृदय आदि करते हैं तो विश्व में यज्ञीय हवि को फैलाने का कार्य वायु करती है। प्रक्रिया दोनों स्थानों पर समान है।

एक दूसरी समानता-शरीर की नाभि में जिस प्रकार का भी पदार्थ हम डालेंगे, फल भी वैसा ही प्राप्त होगा। शक्तिशाली, रोगनिवारक पदार्थों के खाने-पीने से शरीर भी शक्तिशाली, एवं रोगरहित होगा। रोगकारक, दुर्गन्ध युक्त पदार्थों के खाने से शरीर भी वैसा ही बनेगा जैसा कि वह खायेगा, पियेगा। सात्विक पदार्थों से सात्विक, राजसिक से राजसिक तथा तामसिक

से तामसिक। इसीलिए सोच समझकर कहा गया है-जैसा खाये अन्न वैसा बने मन। मन ही चिन्तन का आधार है, चिन्तन ही कार्यों का आधार है। इसलिए जैसा भी सात्विक, राजसिक अथवा तामसिक चिन्तन मन करेगा, वैसा ही कार्य व्यक्ति करेगा। उसका जीवन भी वैसा ही बनेगा, इसमें न कोई संशय है, न अत्युक्ति। इस प्रकार हमारी नाभि तथा उसमें पड़ने वाला भोजन ही हमारे शरीर तथा मन दोनों को नियन्त्रित करने वाले हैं।

ठीक यही प्रक्रिया यज्ञ की है। अग्नि में डाला हुआ पदार्थ नष्ट नहीं होता अपितु सूक्ष्म आकार धारण कर लेता है, यह प्रक्रिया आधुनिक वैज्ञानिकों को भी स्वीकृत है। विश्व की नाभि-यज्ञ कुण्ड में हम जो कुछ भी पदार्थ डालेंगे वह भस्म होकर कई गुना शक्तिशाली होकर लाभ या हानि पहुँचायेगा। एक लाल मिर्च उसमें डाल देंगे, तो वही मिर्च जिसे एक अकेला व्यक्ति भी खा सकता था, यज्ञ में भस्म होते ही कई गुना शक्तिशाली होकर अनेक व्यक्तियों को छींके एवं धसका उत्पन्न कर देती है, आँखों में आँसू ला देती है। यही कार्य यज्ञीय हवि= घृत तथा सामग्री आदि भी करती है। जो गुण उस हवि में होते हैं, अग्नि में डालते ही वे गुण सूक्ष्म रूप धारण करके अति शक्तिशाली होकर विश्व के लिए लाभप्रद बन जाते हैं। इसीलिए यज्ञ में चार प्रकार के पदार्थ सामग्री के माध्यम से डाले जाते हैं-

(1) सुगन्धित-कस्तूरी, केशर, अगर, श्वेतचंदन, इलायची, जायफल, जावित्री आदि।

(2) मिष्ट-शक्कर, शहद, छुआरे, किशमिश आदि।

(3) रोगनाशक-सोमलता, गिलोय आदि औषधियां।

(4) पुष्टिकारक-घृत, दूध, फल, कन्द, चावल, गेहूँ, उड़द आदि।

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है कि उक्त चार प्रकार के पदार्थ यज्ञ में डालने से उसका प्रभाव भी उसी प्रकार का ही होगा। वह यज्ञ वातावरण में सुगन्ध भी उत्पन्न करेगा, रोगों को भी नष्ट करेगा तथा इसके द्वारा संसार रूपी शरीर को वह उसी प्रकार पुष्ट करेगा जैसे नाभि में डाले गये पदार्थ प्राणी मात्र के शरीर को पुष्ट करते हैं। प्रक्रिया बिल्कुल समान हैं। केवल व्यष्टि तथा समष्टि का

भेद है। शरीर की नाभि पर व्यष्टि=केवल शरीर आधारित है तो यज्ञ पर समस्त विश्व=समष्टि आधारित है। इसीलिए सोच समझकर ही कहा गया है-अयं यज्ञः विश्वस्य भुवनस्य नाभिः।

यहाँ एक अन्य बात की ओर भी ध्यान दिलाना आवश्यक है। वह यह कि तथाकथित प्रगतिवादियों के द्वारा तर्क दिया जाता है कि पर्यावरण की शुद्धि तो अगरबत्ती, गुग्गुलु अथवा सुगन्धित पुष्प आदि के द्वारा भी हो सकती है, पुनः यज्ञ में केसर आदि से युक्त मूल्यवान् सामग्री तथा घृत आदि जलाने से क्या लाभ? इस शंका का उत्तर सदियों पहले महर्षि दयानन्द ने ही यह कह कर दे दिया था यदि आप पदार्थ विद्या को जानते तो ऐसी शंका न करते। यज्ञ में डाली गयी हवि वाली अग्नि में ही छेदन-भेदन का वह गुण है कि वह दुर्गन्ध युक्त वायु को छिन्न-भिन्न तथा हल्का करके बाहर निकालने के साथ-साथ रोगों के कीटाणुओं को भी नष्ट करती है क्योंकि उस हवि में उसी प्रकार के पदार्थ डाले गये हैं। धूपबत्ती आदि की सुगन्ध में वह सामर्थ्य नहीं कि वह दुर्गन्धित एवं रोग कारक वायु को बाहर निकाल सके क्योंकि उनमें भेदक शक्ति नहीं है।

रोग नाश एवं पर्यावरण की शुद्धि यज्ञ का केवल एक ही पक्ष है। यह यज्ञ के सम्पूर्ण उद्देश्य को प्रकट नहीं करता। यद्यपि आज के दूषित पर्यावरण में जिससे कि समस्त विश्व चिन्तित है, यह पक्ष भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है किन्तु इसके अतिरिक्त भी यज्ञ के अनेक पक्ष अथवा उद्देश्य हैं। यज्ञ का एक नाम इष्टि भी है। ये दोनों यज्ञ धातु से ही निष्पन्न हैं केवल प्रत्ययों का अन्तर है। जिसके द्वारा कुछ चाहा जाए-मांगा जाए, वह इष्टि कहलाती है। तो क्या यज्ञ से भी हम कुछ भी मांग सकते हैं? इच्छा कर सकते हैं? हां अवश्य, वे पदार्थ तो यज्ञ से निश्चित रूप में ही प्राप्त किये जा सकते हैं कि जिनके लिए वेद तथा तदनुकूल गृह्यसूत्रों में विविध यज्ञों किं वा इष्टियों का विधान किया गया है?

**पर्यावरण-प्रदूषण की समस्या**-आज जिस पर्यावरण-प्रदूषण की समस्या से समस्त विश्व चिन्तित है, वेदों में उसका उल्लेख

एवं समाधान भी दिया हुआ है। पर्यावरण चाहे बाह्य हो या आन्तरिक इसके घटक तत्व पंचमहाभूत ही हैं। अग्नि, पृथ्वी, आकाश, जल तथा वायु में पांच तत्व ही पर्यावरण के आधार हैं। ये दूषित होंगे तो पर्यावरण भी दूषित हो जायेगा। ये शुद्ध होंगे तो पर्यावरण भी शुद्ध रहेगा। न केवल बाह्य अपितु आन्तरिक भी, क्योंकि मन भी तो भौतिक ही है तथा शरीर की भांति वह भी इन्हीं तत्वों से मिलकर बना है। ये पांचों तत्व ही व्यष्टि=शरीर तथा समष्टि=समस्त विश्व को नियन्त्रित कर रहे हैं। इसीलिए वेद में इनके शान्तियुक्त होने की बात कही गयी है। यजुर्वेद में कहा गया है कि हमारे लिए शान्तिदायक वायु बहे, सूर्य भी शान्तिदायक रूप में तपे तथा बादल भी शक्तिदायक वर्षा करें। ऐसा नहीं कि कभी अतिवृष्टि तथा कभी अनावृष्टि से हमारा विनाश करें। ऋग्वेद कहता है कि पर्वत भी हमारे लिए शान्तिदायक हों तथा नदियां हमारे लिए शान्तिदायक जल लाएं ऐसा नहीं कि वे भी आजकल की तरह प्रदूषण से युक्त हो जाएं।

वेद केवल इनके शान्ति युक्त होने की बात कहकर छोड़ नहीं देता अपितु इसके उपाय भी बतलाता है। यजुर्वेद में कहा गया है-

**हविष्मतीरिमाऽआपो हविष्माँ आ विवासति।**

**हविष्मान्देवोऽध्वरो हविष्माँ अस्तु सूर्यः॥ यजु. 6/23**

यहां पर जलों तथा सूर्य को हवि देने के लिए कहा गया है। यज्ञीय हवि के द्वारा ही वायु-जल आदि को शुद्ध किया जा सकता है। वही यज्ञीय हवि सूर्य को प्राप्त होती है जिससे शान्तिदायक वर्षा होती है जिसके लिए वेद में कहा गया था-शन्नः पर्जन्योऽभिवर्षतु-बादल शान्ति दायक वर्षा करें। गीता में इस रहस्य को इस प्रकार समझा दिया गया है-

**अग्नौ प्रास्ताहुतिः सग्यगादित्यमुतिष्ठते। आदित्याज्जायते वृष्टिस्ततोऽन्नं ततः प्रजाः॥**

अर्थात् अग्नि में डाली गई आहुति ही सूर्य को प्राप्त होती है जिससे वृष्टि होती है। जैसी आहुति सूर्य को प्राप्त होगी, उससे वैसा ही बादल बनेंगे तथा वैसी ही वर्षा होगी। यज्ञ की शुद्धि, रोगनाशक वायु से बादल भी शुद्ध बनेंगे तथा उनसे वर्षा भी (शेष पृष्ठ 7 पर)

## व्यवहारभानु में शिक्षा के स्वरूप का चिन्तन

व्यवहारभानु महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा लिखित एक छोटी सी पुस्तक है जिसमें उन्होंने व्यवहार से सम्बन्धित बातों पर प्रकाश डाला है। महर्षि दयानन्द इस पुस्तक का आरम्भ करते हुए लिखते हैं कि-**ऐसा किस मनुष्य का आत्मा होगा कि जो सुखों को सिद्ध करने वाले व्यवहारों को छोड़कर उल्टा आचरण करने में प्रसन्न होता हो। क्या यथायोग्य व्यवहार किए बिना किसी को सर्वसुख हो सकता है? क्या कोई मनुष्य अपनी और पुत्रादि सम्बन्धियों की उन्नति न चाहता हो? क्या कोई मनुष्य अच्छी शिक्षा से धर्मार्थ, काम और मोक्ष फलों को सिद्ध नहीं कर सकता? और इसके बिना पशु के समान होकर दुःखी नहीं रहता है? इसलिए सब मनुष्यों को उचित है कि श्रेष्ठ शिक्षा और धर्मयुक्त व्यवहारों से वर्तकर सुखी होके दुःखों का विनाश करे। इसलिए सब मनुष्यों को सुशिक्षा से युक्त होना अवश्य है। इसलिए यह बालक से लेके वृद्धपर्यन्त मनुष्यों के सुधार के अर्थ व्यवहार सम्बन्धी शिक्षा का विधान किया जाता है।**

इसी पुस्तक में महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने शिक्षा के स्वरूप पर चिन्तन करते हुए प्रश्न उठाया है कि कैसे पुरुष पढ़ाने और शिक्षा करने वाले होने चाहिए? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए महर्षि दयानन्द जी लिखते हैं कि-जिसको परमात्मा और जीवात्मा का यथार्थ ज्ञान, जो आलस्य को छोड़कर सदा उद्योगी, सुख दुःखादि का सहन, धर्म का नित्य सेवन करने वाला, जिसको कोई पदार्थ धर्म से छुड़ा कर अधर्म की ओर खींच न सके, वह पण्डित कहलाता है। जो सदा प्रशस्त धर्मयुक्त कर्मों का करने और निन्दित अधर्मयुक्त कर्मों को कभी न सेवनेहारा, जो कदापि ईश्वर, वेद और धर्म का विरोधी और परमात्मा, सत्यविद्या और धर्म में दृढ़ विश्वासी है, वही मनुष्य पण्डित के लक्षण से युक्त होता है।

जो वेदादि शास्त्र और दूसरे के अभिप्राय को शीघ्र ही जानने, दीर्घकाल पर्यन्त वेदादि शास्त्र और धार्मिक विद्वानों के वचनों को ध्यान देकर सुनके, ठीक-ठीक समझ, निरभिमानी शान्त होकर, दूसरों से प्रत्युत्तर करने, परमेश्वर से लेके पृथिवी पर्यन्त पदार्थों को जान के उनसे उपकार लेने में तन,मन, धन से प्रवृत्त होकर काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, शोकादि दुष्टगुणों से पृथक् वर्तमान, किसी के पूछने वा दोनों के संवाद में बिना प्रसङ्ग के अयुक्त भाषणादि व्यवहार न करने वाला मनुष्य है, यही पण्डित का प्रथम बुद्धिमत्ता का लक्षण है।

बुद्धिमान पण्डितों के लक्षण देने के पश्चात् महर्षि दयानन्द जी ने प्रश्नोत्तर शैली में शिक्षा किसे कहते हैं? इस विषय पर चिन्तन किया है-

प्रश्न-शिक्षा किसको कहते हैं?

उत्तर- जिससे मनुष्य विद्या आदि शुभ गुणों की प्राप्ति और अविद्यादि दोषों को छोड़ के आनन्दित हो सकें, वह शिक्षा कहाती है।

प्रश्न-विद्या और अविद्या किसको कहते हैं?

उत्तर-जिससे पदार्थ का स्वरूप यथावत् जानकर, उससे उपकार लेके, अपने और दूसरों के लिए सब सुखों को सिद्ध कर सकें वह विद्या और जिससे पदार्थों के स्वरूप को अन्यथा जानकर अपना और पराया अनुपकार कर लेवे, वह अविद्या कहाती है।

प्रश्न-मनुष्यों को विद्या की प्राप्ति और अविद्या के नाश के लिए क्या करना चाहिए?

उत्तर-वर्णोच्चारण से लेके वेदार्थ ज्ञान के लिए ब्रह्मचर्य आदि कर्म करना योग्य है।

प्रश्न- ब्रह्मचारी किसको कहते हैं?

उत्तर- जो जितेन्द्रिय हो के ब्रह्म अर्थात् वेद विद्या के लिए आचार्यकुल में जाकर विद्याग्रहण के लिए प्रयत्न करे। वह ब्रह्मचारी कहाता है।

प्रश्न- आचार्य किसको कहते हैं?

उत्तर- जो विद्यार्थियों को अत्यन्त प्रेम से विद्या और धर्मयुक्त व्यवहार की शिक्षा पूर्वक विद्या होने के लिए तन-मन और धन से प्रयत्न करे। उसको आचार्य कहते हैं।

प्रश्न- अपने सन्तानों के लिए माता-पिता और आचार्य क्या-क्या शिक्षा करें?

उत्तर- मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद। शतपथब्राह्मण अहोभाग्य उस मनुष्य का है कि जिसका जन्म धार्मिक विद्वान् माता-

पिता और आचार्य के सम्बन्ध में हो। क्योंकि इन तीनों की ही शिक्षा से मनुष्य उत्तम होता है। ये अपने सन्तान और विद्यार्थियों को अच्छी भाषा बोलने, खाने, पीने, बैठने, उठने, वस्त्रधारण, माता-पिता आदि का मान्य करने, उनके सामने यथेष्टाचारी न होने, विरुद्ध चेष्टा न करने आदिके लिए प्रयत्न से नित्यप्रति उपदेश किया करें, और जैसा-जैसा उसका सामर्थ्य बढ़ता जाए, वैसी-वैसी उत्तम बातें सिखलाते जाएं। इसी प्रकार लड़के और लड़कियों को पांच वा आठ वर्ष की अवस्था पर्यन्त माता- पिता की और इसके उपरान्त आचार्य की शिक्षा होनी चाहिए।

प्रश्न- क्या माता-पिता जैसी चाहें वैसी शिक्षा करें?

उत्तर- नहीं, जो माता-पिता और आचार्य अपने सामने यथा-तथा बकने, निर्लज्ज होने, व्यर्थ चेष्टा करने आदि बुरे कर्मों से हटाकर, विद्या आदि शुभगुणों के लिए उपदेश कर तन, मन, धन लगा के उत्तम विद्या व्यवहार का सेवन कराकर अपने सन्तानों को सदा श्रेष्ठ करते जाते हैं, वे माता-पिता और आचार्य कहाकर धन्यवाद के पात्र हैं। फिर वे अपने सन्तान और शिष्यों को ईश्वर की उपासना, धर्म, अधर्म, प्रमाण, प्रमेय, सत्य, मिथ्या, पाखण्ड, वेद, शास्त्र आदि के लक्षण, और उनके स्वरूप का यथावत् बोध करा, और सामर्थ्य के अनुकूल उनको वेदशास्त्रों के वचन भी कण्ठस्थ कराकर विद्या पढ़ने, आचार्य के अनुकूल रहने की रीति भी जना देवें कि जिससे विद्या प्राप्ति आदि प्रयोजन निर्विघ्न सिद्ध हों, वे ही माता-पिता और आचार्य कहाते हैं।

प्रश्न- विद्या किस-किस प्रकार और कर्मों से होती हैं?

उत्तर- **चतुर्भिः प्रकारैर्विद्योपयुक्ता भवति। आगमकालेन**

**स्वाध्यायकालेन प्रवचनकालेन व्यवहारकालेनेति।।**

विद्या चार प्रकार से काम आती है-आगम, स्वाध्याय, प्रवचन और व्यवहारकाल। आगमकाल उसको कहते हैं कि जिससे मनुष्य पढ़ाने वाले से सावधान होकर, ध्यान देके, विद्यादि पदार्थ ग्रहण कर सकें। स्वाध्याय काल उसको कहते हैं कि जो पठन समय में आचार्य के मुख से शब्द, अर्थ और सम्बन्धों की बातें प्रकाशित हों, उनको एकान्त में स्वस्थचित्त होकर पूर्वापर विचार के ठीक-ठीक हृदय में दृढ़ कर सकें। प्रवचनकाल उसको कहते हैं कि जिससे दूसरे को प्रीति से विद्याओं को पढ़ा सकना। व्यवहारकाल उसको कहते हैं कि जब अपने आत्मा में सत्यविद्या होती है, तब यह करना है, वह ठीक-ठीक सिद्ध होके वैसा ही आचरण करना हो सके। ये चार प्रयोजन हैं। तथा अन्य भी चार कर्म विद्याप्राप्ति के लिए हैं-श्रवण, मनन, निदिध्यासन और साक्षात्कार।

श्रवण उसको कहते हैं कि आत्मा मन के, और मन श्रोत्र इन्द्रिय के साथ यथावत् युक्त करके अध्यापक के मुख से जो-जो अर्थ और सम्बन्ध के प्रकाश करनेहारे शब्द निकलें, उनको श्रोत्र से मन और मन से आत्मा में एकत्र करते जाना।

मनन उसको कहते हैं कि जो-जो शब्द, अर्थ और सम्बन्ध वाला आत्मा में एकत्र हुए हैं उनका एकान्त में स्वस्थचित्त होकर विचार करना कि कौन शब्द किस अर्थ के साथ, कौन अर्थ किस शब्द के साथ और कौन सम्बन्ध किस-किस शब्द और अर्थ के साथ सम्बन्ध अर्थात् मेल रखता और इनके मेल से किस प्रयोजन की सिद्धि और उल्टे होने में क्या-क्या हानि होती है इत्यादि।

और निदिध्यासन उसको कहते हैं कि जो-जो शब्द, अर्थ और सम्बन्ध सुने, विचारे हैं वे ठीक-ठाक हैं वा नहीं? इस बात की विशेष परीक्षा करके दृढ़ निश्चय करना।

साक्षात्कार उसको कहते हैं कि जिन अर्थों के शब्द और सम्बन्ध सुने विचारे और निश्चय किए जाते हैं, उनको यथावत् ज्ञान और क्रिया से प्रत्यक्ष करके व्यवहारों की सिद्धि से अपना और पराया उपकार करना आदि विद्या की प्राप्ति के साधन हैं।

इस प्रकार की शिक्षा विधि ही से ही विद्यार्थी सम्पूर्ण व्यवहारों का जानने वाला होता है। इसलिए शिक्षा पद्धति में विद्यार्थी के व्यवहार, और आचरण के ऊपर विशेष ध्यान देना चाहिए।

## विद्या का महत्व तथा प्राप्ति

ले.-शिवनारायण उपाध्याय, कोटा

वर्तमान युग को विज्ञान का युग कहा जाता है। वास्तव में विज्ञान ने पिछले 125 वर्षों में इतनी अधिक नई नई खोजें की हैं जिनकी कभी कल्पना भी नहीं की गयी थी। मनुष्य ने नये वैज्ञानिक साधनों, यन्त्रों का लाभ उठाया और समुद्र के गहनतम तल 18 कि.मी. नीचे तक पहुंच गया। समुद्र में रहने वाले नाना प्रकार के जीव जन्तुओं और मछलियों को खोज निकाला। हजारों वर्षों से अविजित आसमान में गर्व से खड़ी हुई पहाड़ी चोटियों को अपने पैरों के नीचे कर दिखाया। चन्द्रमा पर पहुंचकर वहां की मिट्टी ले आया। मंगल ग्रह पर पहुंचने को तैयार बैठा हुआ है। ऐसे ऐसे शस्त्र बना लिये कि कुछ मिनटों में ही लाखों की क्या बात करे करोड़ों व्यक्तियों को एक साथ स्वर्ग के दर्शन करा दे। हजारों मील दूर बैठे व्यक्ति से सामान्य रूप से बातचीत ही नहीं उसे निहारते भी रहे। मनुष्य की सेवा के लिए रोबोट बना लिये जो व्यापार तक में सहायता देने लगे हैं। गणित ही क्या किसी भी विषय पर जानकारी प्राप्त करने के लिए इन्टरनेट मनुष्य की सहायता करने लगा है। सम्पूर्ण पृथ्वी का चक्कर एक ही दिन में लगा सकते हैं। सम्पूर्ण पृथ्वी एक छोटे से घोंसले के समान बन गई है। बांझ स्त्रियां भी मातृत्व का सुख पाने लग गई हैं। शारीरिक स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए भी इतनी खोजें हो गई हैं कि जिन पर आश्चर्य किया जा सकता है। कई दूरस्थ आकाश गंगाओं के विषय में भी जानकारी जुटाई जा रही है। विज्ञान की देन पर एक निबन्ध तो क्या कई पुस्तकों के द्वारा भी पूर्ण वर्णन करना असंभव है। हमारे वेद के ऋषि ज्ञान की इस महत्ता को समझते थे, तभी तो स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने ऋग्वेद के भाष्य में लिखा है कि संसार में ज्ञान से अधिक मूल्यवान कोई भी दूसरी वस्तु नहीं है। यजुर्वेद अध्याय 26 मन्त्र में तभी तो कहा गया है कि हे मनुष्यों! मैं ईश्वर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री, सेवक और अन्त्यज सभी के लिए कल्याण करने वाली वेदवाणी का उपदेश करता हूँ। इसी तरह आप सब लोग भी इस ज्ञान का प्रचार प्रसार करें। अथर्ववेद में एक पूरा सूक्त इस ज्ञान की उपयोगिता और अजीर्णता पर ही

ईश्वर के आदेश की व्याख्या कर रहा है।

स्तुति योग्य विद्याएं परब्रह्म परमात्मा से प्राप्त हुई हैं। उन्होंने प्राणी मात्र का बड़ा कल्याण किया है। वे विद्याएं हमारे समाज में प्राप्त हों और हमें सुखी जीवन प्रदान करें। विद्याएं समाज में ऐश्वर्यवान् पुरुष के लिए बहुत काल तक श्रेष्ठ मनुष्यों का निर्माण करने वाली, अनेक लक्षण वाली होकर कामनाओं को पूर्ण करती हुई रहे। शिक्षा पर व्यय किया जाने वाला धन व्यर्थ नहीं जाता है। सरकारों को भी अपने वार्षिक आय व्यय चक्र में कम से कम पांच प्रतिशत धन शिक्षा के लिए सुरक्षित करना ही चाहिए और इतनी ही धनराशि प्रत्येक परिवार को अपने बालकों पर व्यय करनी ही चाहिए। इसी बात को ध्यान में रखकर ही अथर्ववेद का कहना है- 'बड़े ऐश्वर्यशाली राजा श्रेष्ठ कार्य सम्पन्न कराने वाले और उपदेशक पुरुषों को शिक्षा देता है और उन्हें सम्मान धन प्रदान करता है। विद्या के लिए आरक्षित धन में वह कमी नहीं करता है, उसको चुराता नहीं है। श्रेष्ठ ज्ञान सम्पन्न शिक्षकों के लिए वह अधिक से अधिक धन की व्यवस्था करता है और उसमें लगातार वृद्धि करता रहता है। इस संसार के अटूट कण कण के लाभ में धन को निधि रूप में रखता है।'

विद्या की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि खर्च करने से वह कम न होकर बढ़ती है। विद्याओं को कोई चुरा भी नहीं सकता है। इसीलिए कहा गया है- 'ये विद्याएं कभी नष्ट नहीं होती हैं और कोई चोर इनको चुरा भी नहीं सकता है। कोई पीड़क शत्रु भी इनकी हंसी नहीं उड़ा सकता है। विद्याओं का स्वामी वाचस्पति विद्या द्वारा प्राप्त जिन दिव्य गुणों का पूजन करता है और अपने जीवन में धारण करता है, वे गुण उसमें बहुत काल तक यथावत बने रहते हैं।' विद्या प्राप्त करने के लिए ब्रह्मचर्य धारण कर, विषयासक्ति से दूर रहना आवश्यक है। आलसी मनुष्य को कभी भी विद्या की प्राप्ति संभव नहीं है। विद्या तप की मांग करती है। इसलिए वेद उपदेश करता है- 'विद्या को घोड़े के समान विषयासक्त व्यक्ति कभी भी प्राप्त नहीं कर सकता है। धूलि के कुएं के समान पलित व्यक्ति भी विद्या

प्राप्ति में सफल नहीं हो सकता है। विद्या की प्राप्ति श्रेष्ठ चारित्रिक श्रेष्ठ व्यक्तियों को चारों ओर से होती है। विद्या उस देश में भी अनुकूलता से, तेजी से प्रचारित होती है जहां शासक सांस्कृतिक दृष्टि से उच्च आदर्श जीवन जीने वाले हों और देश में प्रत्येक व्यक्ति भयरहित रहता हो।

मनुष्यों को इस जीवन में धन, ऐश्वर्य की प्राप्ति तथा आगामी जीवन में मोक्ष का साधन मान कर ज्ञान संचय के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए। इसीलिए वेद में इस पर अधिक बल देते हुए कहा है- 'विद्याएं ही धन हैं, विद्याएं ही परम ऐश्वर्य हैं।'

विद्याओं का सेवन सोमरस और अमृत के सेवन के समान, मोक्ष के सेवन के समान है। हे मनुष्यों। ये जो विद्याएं हैं वे ही परम ऐश्वर्य हैं। हृदय अथवा आत्मा भी विज्ञान के साथ इसी ऐश्वर्य को चाहता है।

ज्ञान की प्राप्ति से निर्बल सबल और निर्धन धन वाला बन जाता है। 'हे विद्याओं। तुम दुर्बल से भी और धीररहित निर्बल से भी स्नेह करती हो। तुम्हारे द्वारा ही कुरूप व्यक्ति सुन्दर और निर्धन व्यक्ति ऐश्वर्यवान बन दिया जाता है। हे कल्याणकारी विद्याओं! तुम घर को मंगलमय बना देती हो। विद्वान लोग अपने कारखानों में तुम्हारे गुणों की ही प्रशंसा करते रहते हैं।'

मनुष्य विद्याएं उपार्जित करके अपनी सन्तानों को उत्तम शिक्षा देते हुए, अन्न, जल आदि सुव्यवस्था करते हुए हृष्ट पुष्ट बुद्धिमान और धर्मनिष्ठ बनें जिससे न चोर आदि उन्हें सता सके और न वे परमात्मा द्वारा दण्ड के भागी मान जावें ऐसा वेद का उपदेश है। मनुष्य के लिए जब सबसे मूल्यवान सम्पत्ति विद्या वा ज्ञान को मान लिया है तो हमें परमात्मा से उसी के प्रदान करने की प्रार्थना करनी चाहिए और स्वयं भी उसकी प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ करना चाहिए। इसी धारणा के आधार पर वेद में परमेश्वर से प्रार्थना की गई है, 'हे सनातन वेद शास्त्र के प्रणेता और पालक परमेश्वर' मैं सब विद्याओं के प्रचारक प्रसारक विद्वान का पुत्र हूँ। हे प्रभो। उस मुझको विद्या पढ़ने में उत्तम नीतियों से युक्त, सब विद्याओं का कहने और ओषधियों के रसों का निकालने वाला तथा विद्या की सिद्धि करने वाला कीजिए।

विद्या चूंकि उपार्जित धन है अतः उपयोग में न लेने से वह नष्ट हो जाती है इसीलिए मनुष्यों को चाहिए की नियमित स्वाध्याय करते रहे। विद्याध्ययन को समाप्त होता हुआ नहीं माना जावे। इसलिए पढ़ने पढ़ाने का कार्य सदैव चलता रहना चाहिए। वेद में कहा गया है, 'जब कोई किसी को पढ़ावे अथवा उपदेश करे तब पढ़ने वाला ध्यान देकर पढ़े और सुने। जब सत्य और मिथ्या का निश्चय हो जावे तब सत्यग्रहण और असत्य का त्याग कर देवे। ऐसा करने पर कोई निन्दा करे अथवा कोई स्तुति करे तो भी सत्य को कभी न छोड़े और मिथ्या का ग्रहण भी न करे।'

जैसा कि पूर्व में कहा गया है ब्रह्मचर्य के अभाव में विद्या प्राप्त नहीं की जा सकती। इसके अतिरिक्त भी ब्रह्मचर्य का बड़ा महत्व है। वेद का कथन है, 'ब्रह्मचर्य के द्वारा ही राजा अथवा शासक राज्य की उचित रूप में पालना कर पाता है। आचार्य भी विद्या प्रदान करने के लिए योग्य अखण्ड ब्रह्मचारी शिष्य की ही कामना करता है।'

'ब्रह्मचर्य और तप के प्रभाव से मृत्यु को हटाकर नष्ट कर देते हैं मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। ब्रह्मचर्य के बल पर इन्द्र ने उत्तम पदार्थों के लिए सुख को धारण किया हुआ है।'

विद्या प्राप्त व्यक्ति ही द्विज कहलाता है। विद्या प्राप्त कर लेने के उपरान्त व्यक्ति का यह कर्तव्य हो जाता है कि जो ज्ञान उसने प्राप्त किया है उसे अन्यों को प्रदान करे। यदि वह ऐसा नहीं करता है तो वह आचार्य का सदैव ऋणी बना रहेगा। ईश्वर ने भी मनुष्य को आज्ञा दी है- 'हे विद्वान्! तू जब तक जीवित रहे तब तक विद्यारूपी यज्ञ का अच्छे प्रकार प्रचार करता रह और अपने विद्यादान के द्वारा मनुष्यों को पुष्कल अन्न और धन प्राप्ति के योग्य बना दे।' यदि एक बार विद्या प्राप्ति द्वारा अज्ञान अथवा अविद्या नष्ट हो जावे तो वह उसी प्रकार पुनः जीवित नहीं हो सकती है जैसे कुल्हाड़े से काटा गया वृक्ष पुनः नहीं बढ़ता है। वेद में स्पष्ट कहा गया है कि बिना ज्ञान के मुक्ति संभव नहीं है इसलिए आज ही हमको व्रत लेना चाहिए कि हम अपना पूरा जीवन ज्ञान प्राप्ति और उसके प्रचार प्रसार में लगा देंगे।

## आओ उसे ढूँढें

ले.-वेदरत्न स्व. डा. सत्यव्रत राजेश, दयानन्द नगरी ज्वालापुर, हरिद्वार

ज्ञान की दृष्टि से वेद अनन्त हैं। वह अपने गर्भ में ईश्वर जीव तथा प्रकृति के रहस्यों को छिपाए हुए हैं। साधारण विद्वानों को उसमें छिपे रत्न प्रकट नहीं होते किन्तु ऋषि लोग उसके अन्दर निहित तत्त्वों को देख लेते हैं। मैं भी आर्याभिविनय में आए यजुर्वेद के एक मन्त्र को आपके सम्मुख प्रस्तुत कर रहा हूँ जिसमें जगत् में मुख्य तत्त्व, उनका पृथकीकरण, मिलन स्थल तथा ज्ञान में आने वाले व्यवधानों का उल्लेख है।

-मन्त्र यजुर्वेद 17, 31 है।

न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव।

नीहारेण, प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति।।

अर्थात् तुम उसे नहीं जानते जिसने इन लोक लोकान्तरों को उत्पन्न किया है। वह पृथक है तथा तुम्हारे अन्दर विराजमान है। मिलता इस लिए नहीं है कि आप अज्ञान के कुहरे से ढके हो, बकवादी, प्राण पोषण तत्पर तथा मनमानी करने वाले हो।

इस मन्त्र ने कई रहस्यों से पर्दा उठाया है। पहले यह कि जगत में तत्त्व कितने हैं जो मूल तथा अनादि अनन्त हैं। मन्त्र में एक तत्त्व वह है जिसे नहीं जानते, दूसरे वे जो नहीं जानते तथा तीसरे वे जिन्हें बनाया गया है। जिसे नहीं जानते वह ज्ञातव्य ईश्वर है। उसके ज्ञान से ही मृत्यु से छुटकारा मिल सकता है। “तमेव विदित्वातिमृत्युमेति।।”-यजु. 31.181 न जानने वाली सत्ता का नाम जीव है। ये अनेक हैं। जिन की ईश्वर ने रचना की है, कारण से कार्य रूप में परिणत किया है, उस सत्ता को प्रकृति कहते हैं।

न तं विदाथ य इमा जजान-मन्त्र भाग में वेद ने त्रैतवादा का प्रतिपादन कर दिया है।

वेद मन्त्र का ‘अन्यत्’ पद उन मान्यताओं पर कुठाराघात करता है जिनके अनुसार जीव ब्रह्म का अंश है या जीव तथा ब्रह्म एक ही हैं। तात्त्विक दृष्टि से देखें तो ये दोनों ही मत समीचीन नहीं हैं। क्योंकि जीव को ब्रह्म का अंश मानने पर

प्रश्न यह होगा कि अंश तथा अंशी में परिमाण भेद तो होता है गुणभेद नहीं होता। जैसे सोने की सिल्ल से एक टुकड़ा काट कर उसका परीक्षण करते हैं तो टुकड़े तथा सिल्ली में छोटे बड़े का परिमाण भेद तो मिलेगा किन्तु गुणभेद नहीं। टुकड़ा यदि शुद्ध है तो सिल्ली का सोना भी शुद्ध होगा। यदि टुकड़े के सोने में खोट है तो सिल्ली में भी खोट होगा। क्योंकि दोनों में अंशाशीभाव है। यह नियम संसार की सब वस्तुओं पर लागू होता है। जीव भी यदि ब्रह्म का अंश होता तो जीव, ब्रह्म के समान होता या ब्रह्म जीव के समान होता किन्तु न तो जीव ब्रह्म के समान सर्वज्ञ तथा सर्वव्यापक है और न ब्रह्म, जीव के समान अल्पज्ञ या एकदेशी है। अतः जीव को ब्रह्म का अंश नहीं माना जा सकता। गुणभेद दोनों को पृथक-पृथक सिद्ध करते हैं।

जीव को ब्रह्म का अंश मानने पर ब्रह्म अखण्ड नहीं रहेगा। जीवों के रूप में उसके असंख्य टुकड़े मानने पड़ेगे।

ऐसे ही जीव तथा ब्रह्म को एक मानने पर भी अनेक प्रश्न खड़े होंगे। क्योंकि दोनों का भेद स्पष्ट है। जैसे जीव अल्पज्ञ, ब्रह्म सर्वज्ञ, जीव अल्पशक्तिवाला तथा ब्रह्म सर्वशक्तिमान, जीव कर्मों का कर्ता भोक्ता तथा ब्रह्म द्रष्टा, जीव जन्म लेता तथा ब्रह्म अजन्मा, जीव मरता ब्रह्म अमर, जीव शरीर के सम्बन्ध से वृद्ध होता तथा ब्रह्म अजर, जीव को भूख, प्यास, शीत, ताप, निद्रा आदि दुःख सताते तथा ब्रह्म इनसे अछूता, जीव सांसारिक सुखभोग की इच्छा करता तथा ब्रह्म इनसे निरिच्छ, जीव बाह्य तथा आभ्यन्तर से युक्त होता तथा ब्रह्म निर्लेप, जीव को पुत्रैषणा, वित्तैषणा तथा लोकैषणा सताती तथा ब्रह्म पूर्ण होने से ऐषणाओं से पृथक, जीव को शत्रु मृत्यु आदि का भय तथा ब्रह्म अभय, जीव सत्चित ब्रह्म सच्चिदानन्द, जीव पक्षपाती तथा ब्रह्म निष्पक्ष, जीव में दया तथा निर्दयता दोनों किन्तु ब्रह्म दयालु, जीव न्यायान्यायी तथा ब्रह्म न्यायकारी,

जीव पवित्रापवित्र किन्तु ब्रह्म पवित्र, जीव सृष्टि रचना से अनभिज्ञ तथा ब्रह्म सृष्टिकर्ता, जीव उपासक तथा ब्रह्म उपास्य, जीव सेवक ब्रह्म स्वामी। इस प्रकार अनेक भेदों के होने पर भी एक मानना समीचीन कैसे माना जा सकता है। वेद मन्त्र ने ‘अन्यत्’ पद से इसका समाधान कर दिया है।

इस विवेचन के उपरान्त वह कहाँ मिलेगा, क्योंकि ब्रह्म तो सर्वज्ञ है किन्तु जीव एक देशी है, इस प्रश्न का समाधान करते हुए वेद ने कहा है-युष्माकमन्तरं बभूव-वह तुम्हारे अन्दर है। वह तुम्हारे अन्दर विराजमान है, यह वाक्य परमेश्वर की स्थिति का वाचक नहीं अपितु उसे जानने तथा मिलने के स्थान का वाचक है। गीता में इसी भाव को लेकर श्री कृष्ण जी ने कहा था-

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।

हे अर्जुन ईश्वर सब प्राणियों के हृदय स्थल में स्थित है। ईश्वर के सर्वव्यापक होने पर भी उससे मिलने का इच्छुक जीव तो सर्वत्र नहीं। मिलन तभी होगा जब मिलने का इच्छुक तथा जिससे मिलना हो वे दोनों एक ही स्थान पर हों। प्रभु तो सर्वत्र है, विश्व के कण कण में है किन्तु जीवात्मा तो सारे संसार की क्या कहें सारे शरीर में भी विद्यमान नहीं है। इन दोनों का मिलन स्थान हृदय होने से मन्त्र ने “युष्माकमन्तरं बभूव कहा था। उसी का योगाभ्यास से अनुभव करके वेद वेदांगों के तत्त्वज्ञ श्रीकृष्ण जी ने अन्दर का स्थान हृदय बतलाया था।

पहले बतला चुके हैं कि मिलन वहाँ होता है जहाँ दोनों वर्तमान हों। परमात्मा तो सर्वव्यापक होने से सर्वत्र विद्यमान है। अब देखना यह है कि जीवात्मा का शरीर में स्थान कहाँ है? कुछ दार्शनिक जीव को सारे शरीर में व्यापक मानते हैं किन्तु यह तो इसलिए युक्त नहीं है कि हाथी तथा चींटी के शरीरों में जाने वाले जीव को छोटा बड़ा मानना होगा तथा शरीर का भाग कटने पर जीव का खण्ड होना मानना पड़ेगा। क्योंकि जीव सर्वव्यापक नहीं है। जीवात्मा

के शरीर में स्थान के विषय में महर्षि दयानन्द जी ने कुछ नहीं लिखा किन्तु सत्यार्थप्रकाश के अष्टम समुल्लास में प्रभु द्वारा बनाई विचित्र शरीर रचना पर विचार करते हुए वे लिखते हैं “जीव के जागृत स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाओं को भोगने के लिए स्थान विशेषों का निर्माण” इससे स्पष्ट है कि जीवात्मा शरीर में तीनों अवस्थाओं में एक ही स्थान पर नहीं रहता प्रत्युत भिन्न स्थानों पर रहता है। महर्षि द्वारा ‘स्थान विशेषों’ में बहुवचन का यही तात्पर्य है।

इन तीनों अवस्थाओं में जीव शरीर के किस भाग में रहता है, इसका विवेचन करते हुए वैदिक विद्वान् आचार्य अभय देव जी वैदिक विनय में जागृत अवस्था में जीव का स्थान मस्तिष्क, स्वप्न में कण्ठ तथा सुषुप्ति में हृदय मानते हैं। यहाँ प्रश्न होगा कि ईश्वर की प्राप्ति के लिए तो तुरीयावस्था की आवश्यकता है। वह तो समाधि का विषय है, पूर्वोक्त तीनों अवस्थाओं का विषय है ही नहीं। तुरीयावस्था तो इन तीनों से अतिरिक्त चौथी है, फिर जीव का समाधि में कहाँ स्थान माना जाए? जीव तथा ईश्वर का मिलन कहाँ सम्भव हो सकता है? उपर्युक्त तीनों अवस्थाओं में से सुषुप्ति, समाधि के अधिक निकट है। सुषुप्ति तमोगुणाभिभूत अवस्था है तथा समाधि विशुद्ध सत्त्वगुणाभिभूत अवस्था है। दोनों में ही बाह्यज्ञान का अभाव रहता है। इनकी एक समानता दिखाते हुए दर्शन में कहा है-समाधिसुषुप्ति मोक्षेषु ब्रह्मरूपता।।

यहाँ समाधि के निकट सुषुप्ति को बतलाया है। अतः समाधि में जीव का शरीर में वही स्थान है जो सुषुप्ति में होता है। वह है हृदय। वेद ने ईश्वर सर्वत्र ओतप्रोत मानते हुए भी प्राप्ति की दृष्टि से उसे अन्दर तथा गीता ने हृदय बतलाया है। दोनों का तात्पर्य एक ही है। यह अत्यन्त रहस्य का विषय था जिसे वेद ने सरलता से व्यक्त कर दिया। साथ ही यह भी संकेत दे दिया कि उपासक समझ लें कि वह बाह्य दृष्टि (शेष पृष्ठ 6 पर)

### पृष्ठ 5 का शेष-आओ उसे ढूँढ़ें

का विषय नहीं है, उसे तो अन्दर खोजना होगा। जगत् उसकी महिमा है जो बाह्य दृष्टि का विषय है तथा वह अन्दर का विषय है।

ईश्वरज्ञान में बाधक तत्वों में पहला बतलाया है-नीहारेण प्रावृताः- अज्ञान के कुहरे से अन्तःकरण का ढका होना। कुहरा शब्द अज्ञान के लिए बहुत सार्थक है। कुहरा कहीं कम, कहीं मध्यम तथा कहीं घना होता है। ऐसे ही कुछ लोगों के सामने इतना अधिक अज्ञान का कुहरा है कि वे ब्रह्म की सत्ता ही नहीं मानते। कुछ के सामने ब्रह्म का रूप-स्वरूप स्पष्ट नहीं है अतः वे प्रकृति तथा जीव के पचड़े में पड़े रहते हैं। तीसरे वे हैं जो ब्रह्म को जानते तो हैं किन्तु अज्ञान का कुछ आवरण अभी शेष है।

2. दूसरा कारण जल्प्याः बतलाया है। यह वह अवस्था है जब हम ब्रह्म का उपदेश तो बहुत करते हैं किन्तु साधना करके उसका वास्तविक स्वरूप नहीं जान पाते। साधना के विषय को वाणी का विषय बताने वाले जल्पी कहलाते हैं। ईश्वर अनुभव का विषय है जिसे अष्टाङ्गयोग से जाना जाता है।

3. तीसरा कारण असुतृप बतलाया है जिसका तात्पर्य है अपने प्राण पोषण में तत्पर होना। कुछ लोग अपने प्राणों को तृप्त करने में दूसरों के प्राण लेने में भी संकोच नहीं करते। ऐसे लोग सौ जन्मों में भी ईश्वर को न जान सकते हैं और न प्राप्त कर सकते हैं। जिसके सहृदय में प्राणिमात्र के लिए प्रेम

उत्पन्न नहीं होता वह ईश्वर से प्रेम क्या करेगा। असुतृप भी प्रभु का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। ईश्वर प्राप्ति के लिए मन की अवस्था हो जाए कि हम कह उठें:-

**न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्।**

**कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्॥**

मुझे न राज्य चाहिए न स्वर्ग और न मोक्ष, मैं तो दुःखों से सन्तप्त लोगों के कष्टों को मिटाना चाहता हूँ, सब को सुखी बनाने की मेरी इच्छा है।

4. चौथी बाधा ईश्वर ज्ञान में है उक्थशास होना शास्त्रविधि को छोड़कर मनमाने आचरण करना। वेदादि सत्य शास्त्रों में ईश्वर ज्ञान के तथा ईश्वर के स्वरूप के विषय में जो बतलाया है उन यम नियमों आदि की परवाह न करके कल्पित स्वरूप के पीछे भागना। गीता ने ठीक ही कहा है-

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।

न स सिद्धिमवाप्नोति न शान्तिं न च तत्सुखम्॥

शास्त्रविधि को छोड़कर मनमानी करने वाले को सिद्धि, शान्ति तथा सुख नहीं मिलता। शास्त्रमर्यादानुसार ज्ञान प्राप्त करना भी ईश्वर ज्ञान में आवश्यक है।

इस प्रकार इस मन्त्र में तीन सत्ताएं, ईश्वर की पृथक्ता, उसकी अन्दर प्राप्ति तथा उसके ज्ञान में बाधक तत्वों का सुन्दर सन्देश दिया गया है जो पाठक का ज्ञान संवर्धन करता तथा सत्यमार्ग का दर्शन कराता है।

## आर्य मर्यादा के ग्राहक महानुभावों की सेवा में

आर्य मर्यादा साप्ताहिक निरन्तर आपकी सेवा में पहुंच रही है। जिन आर्य मर्यादा के ग्राहकों ने अभी तक अपना वार्षिक शुल्क या पिछला शुल्क नहीं भेजा है उनसे विनम्र प्रार्थना है कि वह अपना वार्षिक शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। आर्य मर्यादा का वार्षिक शुल्क मात्र 100/- रुपये है और आजीवन सदस्यता शुल्क 1000/- रुपये है। इसलिये मेरी सभी ग्राहक महानुभावों से प्रार्थना है कि वह अपना शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। इसके साथ ही आर्य समाजों के पदाधिकारियों एवं सदस्यों से भी निवेदन है कि वह अधिक से अधिक आर्य मर्यादा के ग्राहक बनाने में सहयोग करें। आशा है आप का सहयोग हमें प्राप्त होगा।

-व्यवस्थापक आर्य मर्यादा

## आर्य समाज गांधी नगर-2 का वार्षिक उत्सव

आर्य समाज गांधी नगर-2 जालन्धर का वार्षिक उत्सव 28 नवम्बर 2019 दिन वीरवार से 1 दिसम्बर 2019 दिन रविवार तक बड़े हर्षोल्लास के साथ मनाया जा रहा है। इस अवसर पर आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के महोपदेशक पं. विजय शास्त्री जी के प्रवचन होंगे। आप सभी से प्रार्थना है कि सपरिवार इष्टमित्रों सहित पधार कर धर्मलाभ प्राप्त करें।

-प्रधान आर्य समाज गांधी नगर-2 जालन्धर

## आर्य समाज जीरा में दशहरा पर्व मनाया गया

आर्य समाज जीरा में दशहरा पर्व बड़ी ही धूमधाम और श्रद्धा के साथ मनाया गया। जिसमें सबसे पहले प्रातः 9.00 बजे आर्य समाज के पुरोहित ने बृहद यज्ञ करवाया। तत्पश्चात पंडित जी ने दशहरा पर्व क्यों मनाया जाता है इसके बारे में बताते हुये कहा कि हम दशहरा पर्व इसलिये मनाते हैं कि जिससे हमें प्रेरणा लेकर अपने जीवन सुधार करने चाहिये कि हम कभी भी बुराई के पथ पर अग्रसर न हों। अन्यथा हमारी भी वहीं हालत होगी जो हालत रावण के साथ हुई थी। उन्होंने कहा कि हमें इन पुतलों को जलाने से पहले अपने अन्दर के काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार रूपी बुराईयों को जलाना होगा। अगर सचमुच रावण को जलाना चाहते हो तो समाज में जो बुराईयां, कुरीतियां, फैल रही हैं, अमानवीय अत्याचार हो रहे हैं, लूटपाट की घटनाएं हो रही हैं, माँ, बहन और बेटियों पर जुल्म हो रहे हैं, इन सबके विरुद्ध लड़ने का संकल्प लो। पुतलों के जलाकर लाखों रूपया बर्बाद करने से अच्छा है कि इन पैसों से किसी गरीब का पेट भरे। पुतले जला देने से बुराईयां समाप्त होने वाली नहीं हैं। अगर ऐसा होता तो आज तक हमारे देश में कोई बुराई नहीं होती। हजारों वर्षों से हम रावण का प्रतीक मानकर पुतलों को जलाते हैं। रावण को हम सभी दुष्ट और बुराई का प्रतीक मानते हैं। परन्तु कभी अपने अन्दर झांककर देखने का प्रयत्न किया कि कहीं हमारे अन्दर भी तो रावण रूपी अहंकार, क्रोध, लोभ आदि तो विद्यमान नहीं हैं? हमें अपने अन्दर के रावण रूपी दुर्गुणों को नष्ट करना होगा। मेघनाद रूपी भ्रष्टाचार को समाप्त करना होगा, कुम्भकर्ण रूपी आलस्य का नाश करना होगा।

अन्त में आर्य समाज के प्रधान श्री सुभाष चन्द्र आर्य जी ने भी कहा कि हमें पहले इस देश में आर्यों का साम्राज्य स्थापित करना चाहिये। प्रधान जी ने आए हुये आर्य सज्जनों को बधाई देते हुये इस पर्व के आयोजन का समापन करवाया। शांति पाठ के उपरान्त श्रीमती सावित्री जी ने अपने घर से लाए हुये मीठे चावल का प्रसाद वितरण करवाया।

पुरोहित आर्य समाज जीरा

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।

अथा ते सुप्रमीमहे॥

-३० ४.२.१३.२

**भावार्थ-**हमें योग्य है कि जिस वस्तु की इच्छा हो आपसे माँगें। आप अवश्य देंगे, क्योंकि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड हमारे लिए ही आपने बनाया है। आप तो आनन्द-स्वरूप हो किसी पदार्थ की भी अपने लिए कामना नहीं करते, यदि वस्तु माँगने पर भी हमें नहीं देते तो वह वस्तु हमें हानि करने वाली है, इसलिए नहीं देते। हम सब को जो सुख मिले और मिल रहे हैं, वह सब आपकी कृपा है, हम आपकी भक्ति में मग्न रहेंगे तो कोई ऐसा सुख नहीं जो हमें न मिले सके।

## पृष्ठ 2 का शेष-वैदिक यज्ञ विज्ञान

शुद्ध ही होगी। उस वर्षा से जीवन प्राप्त करने वाली खेती, वनस्पति भी शुद्ध ही होगी तथा उसे खाने वाले प्राणी भी शरीर एवं मन से शुद्ध होंगे। इसके विपरीत उद्योगों आदि से उत्पन्न विषैले धुएं के सम्पर्क से वायु भी विषैली बन जायेगी जिससे उसी प्रकार के बादल बनेंगे जो दूषित जल ही बरसाएंगी। इस प्रक्रिया के अनुसार विषैले धुएं के कारण तेजाबी वर्षा को स्वयं आंखों से देखकर वैज्ञानिक भी इस प्रक्रिया पर विश्वास करने लगे हैं।

यज्ञीय आहुति जहां एक ओर शान्तिदायक बादलों को उत्पन्न करती है वहां दूसरी ओर वह वातावरण में माधुर्य का संचार भी कर देती है। ऋग्वेद में कहा गया है-

मधुवाता ऋतायते मधुक्षरन्ति  
सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वौषधीः।

(ऋग्. 1/6/18)

अर्थात् वायु, नदियां, औषधियां ये सब माधुर्ययुक्त भी हों। माधुर्य का अर्थ केवल मीठा ही नहीं है क्योंकि वायु कैसे मीठी होगी? यहां पर मधु का अर्थ समतायुक्त (Balanced) हैं। वही वायु मधु कह लायेगी जो न बहुत रूक्ष हो, न दाहक हो, न अत्यधिक शीतल हो, न झञ्झावात के रूप में हो अपितु समरस हो। इसी प्रकार नदियों के जल भी विषैले, रोगोत्पादक न हों अपितु माधुर्यपूर्ण हों। यह माधुर्य=समरसता यज्ञ के द्वारा ही सम्भव है, अन्यथा नहीं। 'मेडिसिना एल्टनेटियां' द्वारा आयोजित विश्व सम्मेलन में 'भारत में पर्यावरण संरक्षण संघ', नासिक के प्रो. एस. सी. मुले ने अग्निहोत्र के प्रदर्शन के समय बतलाया कि पृथिवी तथा सूर्य के मध्य वातावरण प्रदूषण के कारण बिगड़ गया है इसे अग्निहोत्र से ही अनुकूल बनाया जा सकता है।

**यज्ञ से रोग नाश**-यज्ञीय सामग्री में रोगनाशक गुण रहते हैं, यह पहले कहा जा चुका है। वैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा भी इस सिद्धान्त की पुष्टि हो चुकी है। फ्रांसीसी वैज्ञानिक ट्रिलवर्ड ने परीक्षणों के आधार पर सिद्ध किया है कि यज्ञ में शक्कर जलाने से क्षय, चेचक तथा हैजा आदि बीमारियां तुरन्त नष्ट हो जाती हैं क्योंकि शक्कर अथवा खांड के जलने से फारमैन-डी-हाइड गैस उत्पन्न होती है जिसमें कृमियों को नष्ट करने की अद्भुत क्षमता है। तीन चार दशक पूर्व डॉ. कुन्दन लाल अग्निहोत्री ने क्षयरोगियों पर यज्ञ का

परीक्षण टी. बी. सैनिटोरियम जबलपुर में किया था जिससे 80 प्रतिशत रोगियों को लाभ पहुँचा था। क्षयपीड़ित रोगियों को पर्वतों पर शुद्ध वायु सेवनार्थ जाने की सलाह दी जाती है। यज्ञ से न केवल वायु ही शुद्ध होती है अपितु क्षय के कीटाणु भी नष्ट हो जाते हैं। लगभग दस बारह वर्ष पूर्व डॉ. ट्रेल्ट ने मुनक्का किशमिश आदि शर्करा प्रधान द्रव्यों को अग्नि में जलाकर देखा था कि उनके धुएं से टायफायड ज्वर के कीटाणु आधे घण्टे में मर जाते हैं। जर्मनी में भी वैज्ञानिकों ने इस सम्बन्ध में परीक्षण किये। वहां यज्ञ के धुएं को नालियों में बन्द करके उसमें यक्ष्मा के कीटाणु छोड़े गये। थोड़ी देर बाद ही वे कीटाणु मर गये।

यह तो यज्ञ का भौतिक लाभ हुआ। यद्यपि यह लाभ भी इतना महान् एवं विस्तृत है कि इस की समानता अन्य कोई भी कार्य नहीं कर सकता तथापि केवल पर्यावरण शुद्धि तथा रोगनाश ही यज्ञ का उद्देश्य नहीं है अपितु वह तो मनुष्य को देवत्व की ओर ले जाने का साधन है। यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे के अनुसार पीछे हमने स्पष्ट किया कि यज्ञ उसी प्रकार विश्व का आधार है जैसे कि नाभि हमारे शरीर का। नाभि अर्थात् उदर में डाले गये अन्न के भी दो लाभ हैं-शरीर निर्माण तथा मननिर्माण। यद्यपि शरीर तथा मन दोनों भौतिक ही हैं। तथापि विशुद्ध मन आध्यात्मिकता की ओर ले जाता है तथा अशुद्ध मन पाशविकता की ओर। मन पर नियन्त्रण करके ही हम मोक्ष की ओर जा सकते हैं तथा मन के नियन्त्रण में हो कर पाशविकता की ओर। इसीलिए कहा भी गया है-मन एवं मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।

मन का निर्माण हमारे भोजन से होता है सात्विक भोजन से सात्विक तथा तामसिक भोजन से तामसिक मन बनता है। भोजन शरीर के साथ-साथ मन का भी आधार है। इसी प्रकार यज्ञ भी विश्व का आधार=नाभि है। यज्ञ में डाली गयी मन्त्रपूर्वक आहुतियों के द्वारा देवत्व को उसी प्रकार प्राप्त किया जा सकता है जैसे उदर=नाभि में डाले गए भोजन से देवत्व अथवा राक्षसत्व को। प्रक्रिया दोनों जगह समान है। इसलिए यज्ञ का मूल उद्देश्य व्यक्ति की शारीरिक-सामाजिक तथा आध्यात्मिक उन्नति करना है।

वेदमन्त्रों में स्पष्ट रूप में कहा गया है कि यज्ञ के द्वारा हम देवत्व को प्राप्त करें तथा इसके साथ ही आयु, प्राण आदि की भी वृद्धि करें-

**उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय।**

**आयुः प्राणं प्रज्ञां पशुं कीर्तिं यजमानं च वर्धय।।**

( यजु. 34/56 )

यहां पर यज्ञ के द्वारा देवत्व को जगाने के लिए कहा गया है। प्रत्येक व्यक्ति में देवत्व तथा असुरत्व निहित रहता है। अन्तर केवल इतना है कि किसी में आसुरी शक्तियां प्रबल होती हैं तो किसी में दैवी शक्तियां। दैवी शक्तियों से, दिव्य विचारों से व्यक्ति देव बन जाता है तथा राक्षसी वृत्तियों से राक्षस बन जाता है क्योंकि वह वैसा ही आचरण करने लगता है। ये दैवी तथा आसुरी वृत्तियां जन्मजात भी होती हैं। तथा इनका संचय भी किया जाता है। इनमें वृद्धि तथा हास भी किया जा सकता है। राक्षसी वृत्तियां, राक्षसी स्वभाव तथा राक्षसी आचरण को छोड़कर दैवी वृत्तियों को ग्रहण करने की प्रक्रिया का नाम ही यज्ञ है। यज्ञ-कर्ता के आसुरी भाव शनैः शनैः लुप्त होने लगते हैं तथा उसमें दिव्यभाव, दिव्यविचार, दिव्य-शक्तियां प्रकट होने लगती हैं। ऐसा तभी होता है जबकि यज्ञ को श्रद्धापूर्वक देवत्व की प्राप्ति के लिए किया जा रहा हो न कि केवल प्रदर्शन के लिए। यज्ञ में श्रद्धा अत्यावश्यक है। इसीलिए वेद कहता है-श्रद्धया ह्यते हविः। श्रद्धापूर्वक ही हवि डाली जाती है। इसी श्रद्धा के आधार पर उसे सत्य की प्राप्ति होती है-श्रद्धया सत्यमाप्यते। यज्ञकर्ता का जीवन सत्यमय बन जाता है। वह मनसा-वाचा-कर्मणा असत्य का सर्वथा परित्याग कर देता है।

यज्ञ के द्वारा देवत्व की प्राप्ति की बात वेदों में बार-बार दोहराया गई है। ऋग्वेद में यज्ञीय अग्नि को सम्बोधित करते हुये कहा गया है कि हे अग्निदेव! हिंसा आदि दोषों से रहित जिस यज्ञ को तुम चारों ओर से भली प्रकार व्याप्त कर लेते हो, वह यज्ञ अवश्य ही देवत्व को प्राप्त कराता है। इसी प्रकार ऋग्. 1.1.2 में कहा गया है कि 'स देवान् एद्र वक्ष्यति' अर्थात् यह यज्ञीय अग्नि देवों अर्थात् दिव्य भावों, दिव्य विचारों तथा दिव्य शक्तियों को हमें प्राप्त करायेगा।

व्याकरण के अनुसार यज्ञ शब्द 'यज' धातु से 'नञ्' प्रत्यय करने

पर निष्पन्न होता है जिसका अर्थ है-देवपूजा, संगति करण तथा दान। यज्ञ से अग्निदेव की पूजा की जाती है। यज्ञ मिलकर (संगतिकरण) किया जाता है तथा यज्ञ के निमित्त घृत सामग्री आदि के लिए दान=द्रव्यों का त्याग भी किया जाता है। जिस प्रकार यज्ञ कुण्ड में होने वाले यज्ञ के द्वारा उक्त तीनों क्रियायें की जाती हैं उसी प्रकार सामाजिक अथवा राष्ट्रीय कार्यों को सम्पन्न करने के लिए भी उक्त तीनों क्रियायें की जाती हैं। ऐसे कार्य भी समाज में अग्रणी, निःस्वार्थी, देवकोटि के व्यक्तियों के द्वारा किये जाते हैं। यज्ञ इसी देवत्व प्राप्ति का साधन है। इसे प्राप्त करके व्यक्ति सत्य, यश तथा श्री से सम्पन्न होता है। इसीलिए यज्ञ में 'ओम् सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयताम्' मन्त्र बोला जाता है। यज्ञ कर्ता अपने आप को सूर्य के समान तथा अग्नि के समान तेजस्वी, वर्चस्वी बनाता है।

यज्ञ कुण्ड में घृत समिधाओं मात्र से यज्ञ करने में यज्ञ की पूर्णता नहीं है, अपितु यज्ञ तो एक महा विज्ञान है। इसने व्यष्टि तथा समष्टि को अपने अन्दर समाहित किया हुआ है। भारत के मनीषियों ने यह भली भाँति जान लिया था कि इस विस्तृत ब्रह्माण्ड की ही लघुतम इकाई मानव है। इसीलिए उन्होंने 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। उन्होंने इन दोनों के संतुलन एवं विकास का एक ही मार्ग देखा तथा वह था यज्ञ का मार्ग। यह याज्ञिक प्रक्रिया शरीर तथा ब्रह्माण्ड में समान रूप में हो रही है। यदि यह न हो तो दोनों ही नष्ट हो जायेंगे।

व्यष्टि-समष्टि, व्यक्ति-समाज, जड़ एवं चेतन को एक ही साथ तृप्त करने की विद्या का नाम यज्ञ है। यज्ञ व्यक्ति के मानस तथा आत्मा दोनों को साथ-साथ विकसित करने का विज्ञान है। महात्मा गाँधी कहते थे कि 'शराब आत्मा तथा शरीर दोनों का नाश कर देती है।' इसके विपरीत यज्ञ आत्मा तथा शरीर दोनों को स्वस्थ एवं समुन्नत बनाता है। यज्ञ विकास की प्रक्रिया है। लघु को महान्, सत्य को भूमा तथा वामन को विष्णु बनाने की प्रक्रिया ही यज्ञ है। इसीलिए यह भी कहा गया है कि 'यज्ञो वै विष्णुः'। यज्ञ कुण्ड में रखी गयी स्वल्प सी अग्नि यज्ञ के माध्यम से अन्तरिक्ष में पहुँच कर विस्तार को धारण करके समस्त जड़ चेतन के लिए हितकारिणी बन जाती है। इसी प्रकार मानव भी यज्ञ के द्वारा अपने हित मानस को विकास की चरम सीमा तक पहुँचा देता है।

## वेदवाणी

# हमारे जीवन में सत्य सङ्कल्प ही उठें

यास्ते शिवास्तव्यः काम भद्रा याभिः सत्यं भवति यद् वृणीषे।  
ताभिष्ट्वमस्माँ अभिसंविशस्वान्यत्र पापीरप वेशया धियः ॥

-अथर्व० ९।२।२५

ऋषिः-अथर्वाः ॥ देवता-कामः ॥ छन्दः-त्रिष्टुप् ॥

**विनय-**हे काम! हे सङ्कल्पमय देव! भगवान् तुम्हारे द्वारा ही अपनी क्रियाओं को करते हुए सब जगत् को उत्पन्न करते और चलाते हैं। हे जगद्-व्यापक सङ्कल्प! हम मनुष्यों में जो असंख्यात इच्छाएँ, कामनाएँ, सङ्कल्प उठा करते हैं, वे भी सब वास्तव में तुम्हारी ही तरंगें हैं, तुम्हारे ही असंख्यात रूप हैं, परन्तु जो तुम हममें अनगिनत रूप धारण करके प्रकट होते हो, जो हममें अनगिनत इच्छाएँ प्रकट होती हैं, उनमें से हम देखते हैं कि कुछ तो पूर्ण हो जाती हैं, सच हो जाती हैं और बहुत-सी अपूर्ण रहकर केवल हमें दुःखी करने का कारण होती हैं, अतः मैं अब चाहता हूँ कि मुझमें वही इच्छाएँ (सङ्कल्प) उत्पन्न हों जो अवश्य सत्य होनी हों। जो व्यर्थ रहनी हों, पूर्ण न होनी हों, ऐसी इच्छाएँ मुझमें प्रकट ही न हों, उत्पन्न ही न हों। मेरी चाहना है कि मैं 'सत्य-सङ्कल्प' हो जाऊँ-ऐसा हो जाऊँ जिसमें सङ्कल्प सत्य ही हों, पर यह कब होगा-यह मैं जानता हूँ कि यह तब होगा-जब मुझमें तुम्हारे मङ्गलरूप ही (मंगल-सङ्कल्प ही) उत्पन्न होंगे। सब ऋषियों का अनुभव है कि जिन मनुष्यों के हृदय सर्वथा सत्यमय, पूर्णतः सत्यनिष्ठ, अतएव पवित्र होते हैं उनमें जो सङ्कल्प उठता है, अपने सङ्कल्प से वे जो कुछ चाहते हैं, जो कुछ वरते हैं वह अवश्य पूर्ण हो जाता है, चूँकि ऐसे सत्यनिष्ठ हृदय उस सत्यस्वरूप भगवान् से सम रेखा में हो जाते हैं, अतः उनमें वे ही सङ्कल्प उठते हैं जो सर्वथा मङ्गलमय होते हैं और सब जगत् के कल्याण के लिए होते हैं या यूँ कहना चाहिए उनमें ईश्वरीय सङ्कल्प ही प्रतिध्वनित होते हैं। इस संसार में जो कुछ हो रहा है, सफल हो रहा है, वह सब ईश्वरीय सङ्कल्प ही है और मङ्गलमय भगवान् का प्रत्येक सङ्कल्प (हम चाहे उसे समझ सकें या न समझ सकें) सर्वकल्याण के लिए ही है, अतः अब मुझमें ऐसे ईश्वरीय, सत्य हो जाने वाले, भद्र सङ्कल्प ही उठे। अभी तक तो मेरे हृदय में अच्छी-बुरी दोनों प्रकार की कामनाएँ उठती हैं, परन्तु हे सङ्कल्पदेव! अब सब पापी बुद्धियाँ मुझसे निकाल दो! जिस सङ्कल्प में तनिक भी अहित की कालिमा हो, मैल हो, वह अब मुझमें न रह सके। मैं सत्य द्वारा अपने हृदय को शुद्ध करता हुआ यत्न करता हूँ कि अपने ज्ञान के अनुसार कोई भी अशिव, अभद्र सङ्कल्प मुझमें न आये।

## अद्वितीय पुरुष महर्षि दयानन्द

खोजा बहुत इतिहास में, पाया नहीं ऋषिवर सा इन्सान।  
जिसने सम्पूर्ण जीवन कर दिया, प्राणी मात्र हित बलिदान ॥

ब्रह्मचारी अनेक हुए, भीष्म, परशुराम और हनुमान,  
पर ब्रह्मचर्य ऋषिवर का, था अनोखा, अनुपम और महान।  
औरों ने रखे व्यक्ति विशेष हेतु, यह व्रत कठिन और बलवान,  
पर ऋषि जी ने रखा, करने मानव-मात्र का कल्याण।  
खोजा बहुत इतिहास में..... ॥ १ ॥

दानी भामाशाह जैसे मिले, किया सहर्ष सारी सम्पत्ति का दान,  
कर्ण की प्रबल ज्ञानशीलता को, जाने और माने सारा जहान।  
पर ऋषि जी के दान का, है महत्व सबसे उच्च और महान,  
जिसने तन, मन, धन तो दे ही दिया, पर न देखा कभी मान व अपमान।  
खोजा बहुत इतिहास में..... ॥ २ ॥

राम, कृष्ण, बुद्ध, दयानन्द हुये देश में युग प्रवर्तक इन्सान,  
समाज से बुराइयाँ हटाने में, थे जिनके अनुपम अवदान।  
ऋषि जी की विशेषता यह थी, ढूँढ निकाला सब बुराइयों का निदान,  
व्यक्ति, समाज, राष्ट्र व विश्व का, बताया किस भान्ति होगा उत्थान।  
खोजा बहुत इतिहास में..... ॥ ३ ॥

गुरु गोविन्द, राणा प्रताप, शेर शिवा, हुए देश भक्त महान,  
बिस्मिल, भगत सिंह, सुभाष ने दे दिए देश हित में अपने प्राण।  
पर ऋषि जी देश हित के साथ ही, मिटाना चाहते थे विश्व त्राण,  
इसलिये खोजा वेद ज्ञान को, जिसमें हैं सब समस्याओं का समाधान।  
खोजा बहुत इतिहास में..... ॥ ४ ॥

मानवता ते सभी गुण, थे ऋषि जी में विद्यमान,  
सत्यवक्ता, निर्भीक, ईश्वर भक्त, परोपकारी और बलवान।  
लोगों को वेदामृत पिलाया, स्वयं को करना पड़ा विष-पान,  
आपकी कीर्ति बनी रहेगी, जब तक सूर्य, चन्द्रमा और आसमान।  
खोजा बहुत इतिहास में..... ॥ ५ ॥

ऋषिवर, तेरा अहसान, कभी नहीं भूल सकेगा यह जहान,  
दे दी कसौटी सत्यार्थ प्रकाश जैसी करने, सत्या सत्य की पहचान।  
आप थे एक अद्वितीय पुरुष, जिसे छू तक नहीं सका था अभिमान,  
कोई माने या न माने, खुशहाल ने तो नतमस्तक होकर लिया मान।  
खोजा बहुत इतिहास में..... ॥ ६ ॥

-खुशहाल चन्द्र आर्य

मोबाइल-98301-35794

**त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः।  
विश्वकर्म विश्वदेवो महाँ असि ॥**

-उ० ३.२.२२.२

**भावार्थ-**हे परमात्मन्! आप सर्वशक्तिमान् होने से सबको दबाने वाले हैं। सूर्य, चन्द्र, अग्नि, विद्युत् दि सब प्रकाशों के प्रकाशक भी आप हैं, आपके प्रकाश के बिना ये सूर्य दि कुछ भी प्रकाश नहीं कर सकते, इसलिए आपको ज्योतियों का ज्योति सच्छास्त्रों में वर्णन किया है। सब ब्रह्मण्डों के रचने वाले और सूर्य आदि सब देवों के देव होने से आप महादेव हैं।

**विभ्राजज्योतिषा स्वःरगच्छो रोचनंदिवः।  
देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे ॥**

-उ० ३.२.२२.३

**भावार्थ-**हे इन्द्र परमेश्वर! आप अपने ही प्रकाश से ऊपर के द्युलोक आदि तथा नीचे के पृथिवी आदि लोकों को प्रकाशित कर रहे हैं। आप आनन्द स्वरूप हैं, आपके परम प्यारे और आपके ही अनन्यभक्त विद्वान् देव, पके साथ गाढ़ी मित्रता के लिए सदा प्रयत्न करते हैं, आपके मित्र बनकर मृत्यु से भी न डरते हुए, आपके स्वरूपभूत आनन्द को प्राप्त होते हैं।